JAYJINENDRA

CHHADHALA PRESENTATION

BY

SAURABH JAIN(INDORE INDIA)

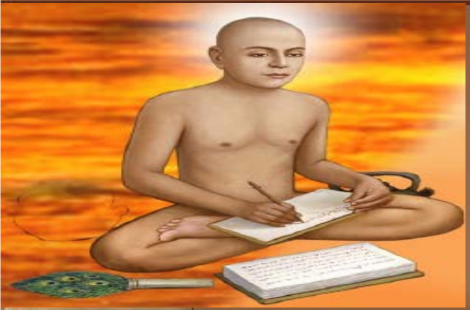

छहढाला

अध्यात्मप्रेमी कविवर पण्डित दौलतरामजी कृत

पहली ढाल

संसार परिभ्रमण के दुःख

मङ्गलाचरण
श्रीगुरु की करुणा
संसार दुःखों का मूलकारण
जीवों के संसार भ्रमण की कथा
निगोद और एकेन्द्रिय के दुःख
त्रसपर्याय की दुर्लभता व दुःख
तिर्यञ्चगति के विविध दुःख
नरकगति के दुःख
मनुष्यगति के दुःख
देवगति के दुःख

पहली ढाल में मङ्गलाचरण में वीतराग-विज्ञानता को, शिवस्वरूप और शिवकार बताते हुए नमस्कार किया गया है। तत्पश्चात् जीव के संसार परिभ्रमण की अत्यन्त कष्टदायिनी कथा का प्रारम्भ हुआ है, जिसमे निगोद से लेकर देवगति तक में प्राप्त दुःखों का विशद वर्णन किया गया है।

मङ्गलाचरण

तीनि भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवसरूप शिवकार, नमों त्रियोग समारिकर॥

(वीतराग) राग-द्वेष रहित

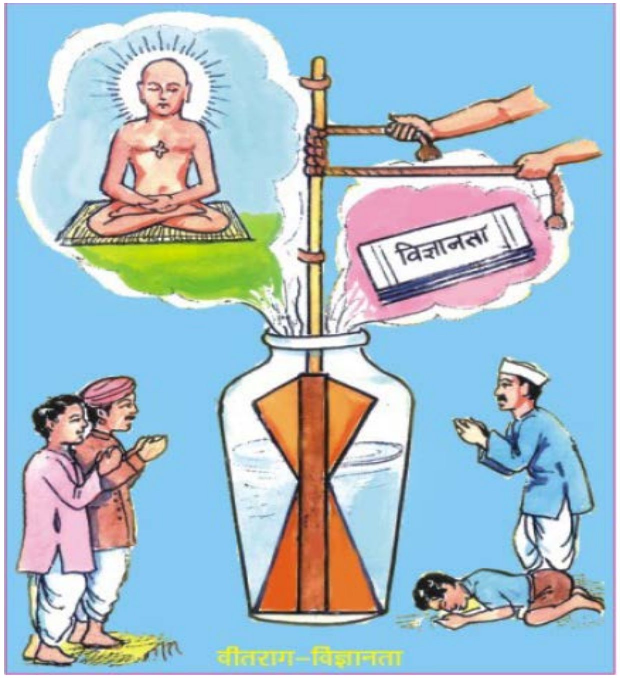

(विज्ञानता) केवलज्ञान

संसार परिभ्रमण के दुःख

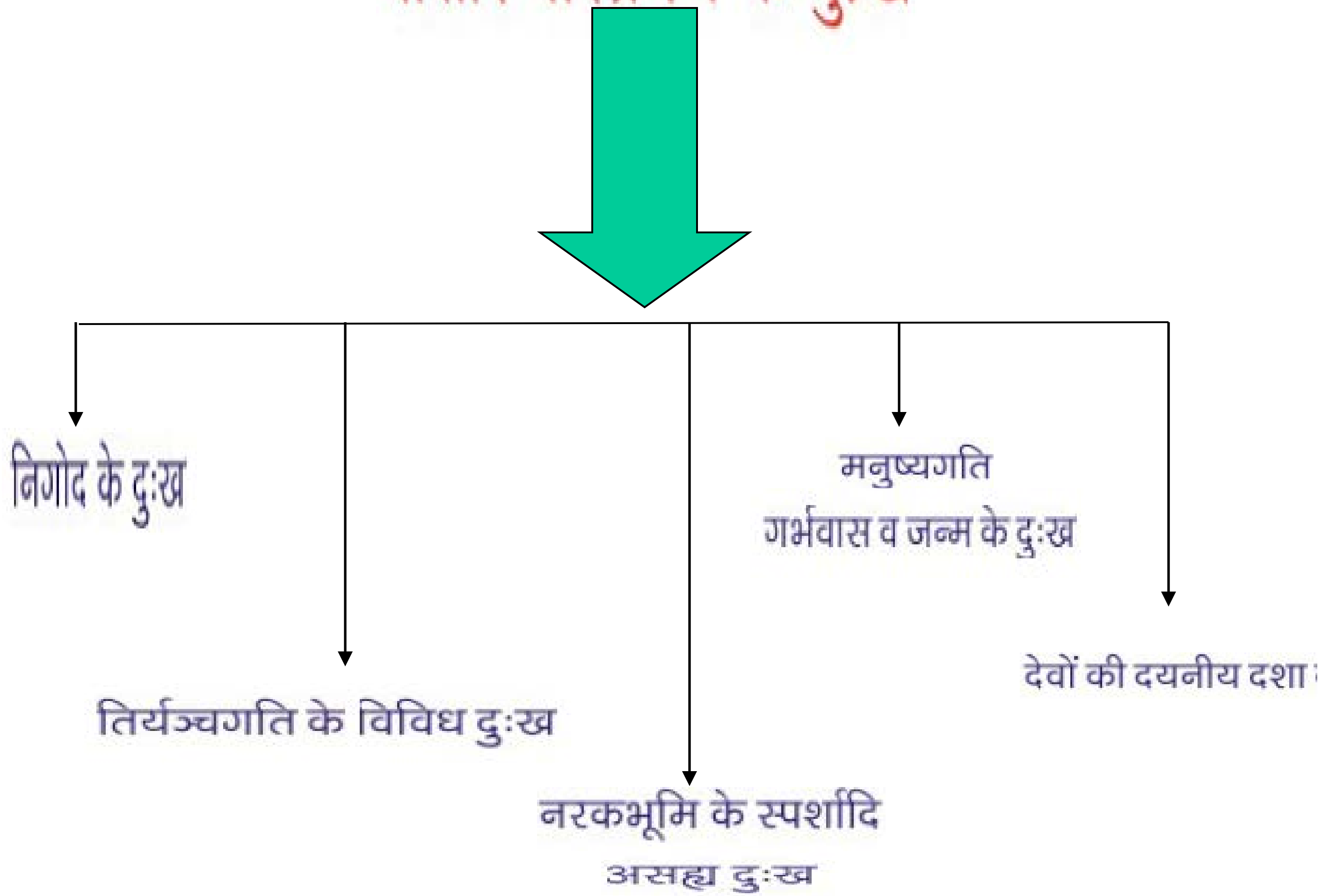

निगोद के दुःख

निगोद में एकेन्द्रिय शरीर धारण किया है और वहाँ अनन्त काल व्यतीत किया है।

एक साँस में अठारह बार जन्मा और मरा

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव के रूप में उत्पन्न हुआ है।

तिर्यञ्चगति के विविध दुःख

त्रसपर्याय में भी लट,
इल्ली आदि दो इन्द्रिय जीव;

; चींटी आदि तीन इन्द्रिय जीव;

भँवरा आदि चार इन्द्रिय

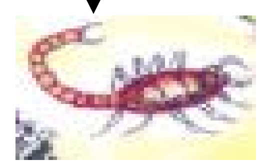

तिर्यञ्चगति में संज्ञी-असंज्ञीदशा

बोझ ढोना,

असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पशु हुआ

सिंह आदि क्रूर परिणामी होकर, इसने अपने से निर्बल अनेक जीवों को मार-मारकर खाया।

बध बन्धन

बाँधा जाना

मारा जाना,

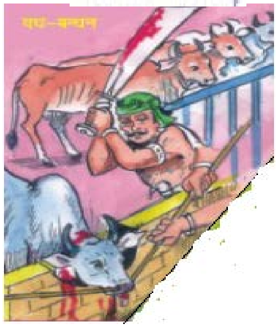

नरकभूमि के स्पर्शादि से होनेवाले असह्य दुःखं

हजारों बिच्छुओं द्वारा शरीर को एकसाथ डङ्क मारने से जितनी वेदना होती है, उससे अधिक वेदना, नरक की भूमि के स्पर्शमात्र से नारकियों को होती है

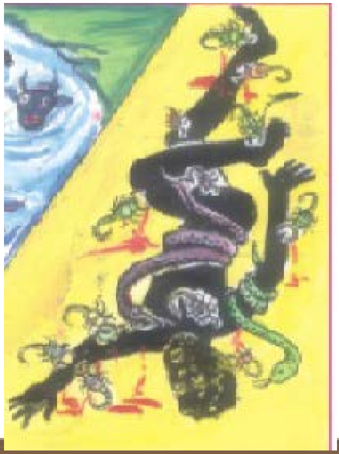

शरीर में दाह उत्पन्न करनेवाली एक वैतरणी नामक नदी है, जिसमें शान्तिलाभ की इच्छा से नारकी जीव कूदते हैं किन्तु वहाँ उनकी पीड़ा अधिक भयङ्कर हो जाती है।

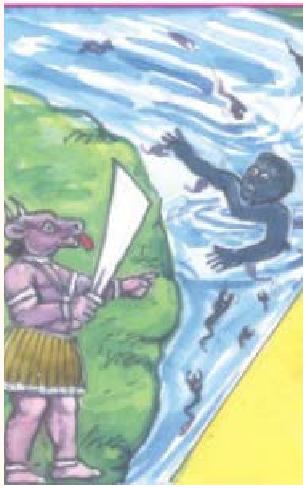

नरकगति में भयङ्कर शीत-उष्णता का वर्णन

उन नरकों में अनेक सेमर के वृक्ष हैं, जिनके पत्ते तलवार की धार के समान तीक्ष्ण हैं। जब दु:खी नारकी छाया मिलने की आशा लेकर, उस वृक्ष के नीचे आता है, तब उस वृक्ष के पत्ते गिरकर उसके शरीर को चीर देते हैं।

उन नरकों में इतनी अधिक गर्मी होती है कि एक लाख योजन ऊँचे सुमेरुपर्वत के बराबर लोहे का पिण्ड भी पिघल सकता है

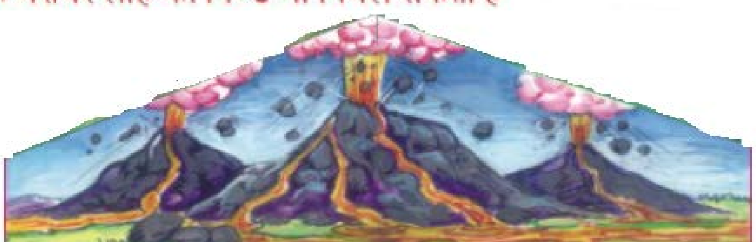

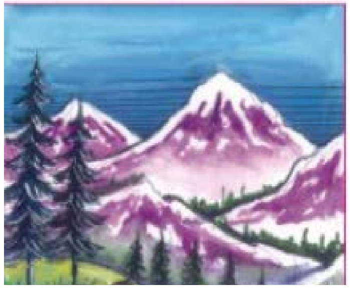

इतनी अधिक सर्दी पड़ती है कि सुमेरुपर्वत के बराबर लोहे का गोला भी गल सकता है। जिस प्रकार लोक कहा

नारकियों में परस्पर एवं असुरकुमार देवों द्वारा प्रदत्त कष्ट और प्यास-भूख की भयङ्कर वेदना

उन नरकों में नारकी एक-दूसरे को दु:ख देते रहते हैं अर्थात् हमेशा आपस में लड़ते रहते हैं। वे एक-दूसरे के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं, लेकिन उनका वैक्रियक शरीर बारम्बार पारे की भाँति बिखर कर जुड़ जाता है।

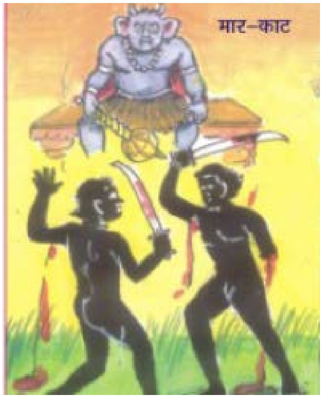

उन नारकी जीवों को इतनी तीव्र प्यास लगती है कि यदि प्राप्त हो जाए तो सम्पूर्ण महासागर का जल भी पी जाएँ, फिर भी तृषा शान्त न हो, किन्तु खेद है! उन्हें पीने के लिए जल की एक बूँद भी प्राप्त नहीं होती।

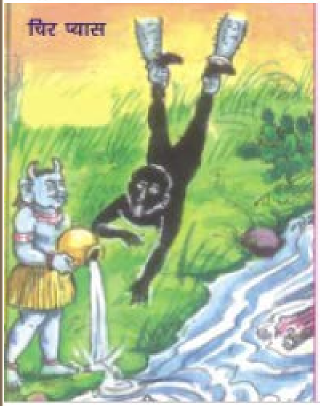

नरकों में इतनी तीव्र भूख लगती है कि यदि खाने को मिल जाए तो तीनों लोक का अनाज एकसाथ खा जाएँ, तथापि क्षुधा शान्त न हो, परन्तु वहाँ खाने के लिए अन्न का दाना भी नहीं मिलता।

मनुष्यगति में गर्भवास व जन्म के दुःख

मनुष्यगति में यह जीव नौ महीने तक माता के पेट में रहा, वहाँ शरीर को सिकोड़कर रहने से तीव्र वेदना सहन की। जन्म के समय, माता के गर्भ से बाहर निकलते हुए भी इस जीव ने जो दु:ख सहन किया; उन दु:खों का वर्णन बहुत काल तक करते रहें तो भी पूर्ण नहीं किया जा सकता। कभी–कभी तो जन्म के समय तीव्र वेदना के कारण माता अथवा पुत्र का, अथवा दोनों का मरण भी हो जाता है।

अज्ञानी जीव, मनुष्यगति में बाल-युवा एवं वृद्धावस्था को गँवाकर,

आत्महित से अजान रहता है

मनुष्यगति में यह जीव बाल्यावस्था में अल्पबुद्धिवाला होने से विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाया

यौवनावस्था में बुद्धिमान तो हुआ किन्तु स्त्री के मोह अर्थात् विषय–भोगों में ही मस्त हो गया.

वृद्धावस्था में इन्द्रियों की शक्ति ही अत्यन्त कम हो गयी अथवा ऐसा कोई रोग लग गया, जिससे अधमरा जैसा होकर पड़ा रहा या मरणपर्यन्त जा पहुँचा।

निम्न जाति के देवों की दयनीय दशा का वर्णन

अन्य देवों का वैभव देखकर अथवा पञ्चेन्द्रियों के विषयों की इच्छारूपी अग्नि में जलता रहा।

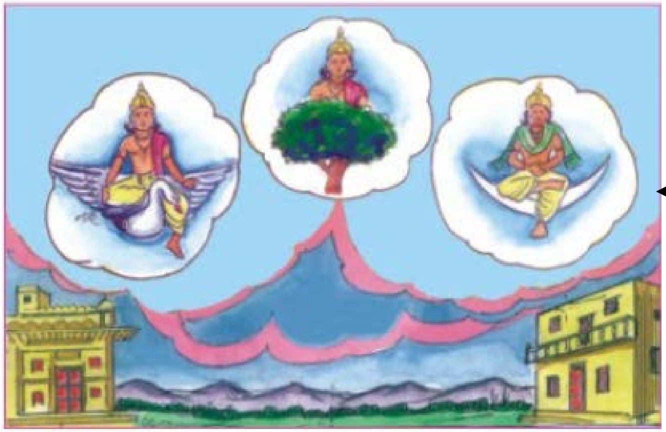

मन्दारमाला को मुरझाते तथा शरीर व आभूषणों की कान्ति क्षीण होते देखकर, 'मेरा मृत्युकाल निकट है' ऐसा अवधिज्ञान द्वारा जानकर, 'हाय! यह भोग अब मुझे भोगने को नहीं मिलेंगे' — ऐसे विचार से, रो-रोकर अनेक दुःख सहन किये।

वैमानिक देवों के दुःख

यह जीव वैमानिक देवों में भी उत्पन्न हुआ, किन्तु वहाँ भी इसने सम्यग्दर्शन के अभाव में विशेष मानसिक दुःख ही प्राप्त किये और वहाँ से मरकर पृथ्वीकायिक आदि स्थावरों के शरीर धारण किये अर्थात् पुनः तिर्यञ्चगति में जा गिरा।

पहली ढाल का सारांश

तीन लोक में अनन्त जीव हैं। सभी सुख चाहते हैं और दुःख से डरते हैं, किन्तु अपना यथार्थ स्वरूप समझे बिना जीव कभी सुखी नहीं हो सकता। चार गतियों के संयोग, सुख-दुःख के कारण नहीं हैं; अपितु जीव, एकत्वबुद्धि के कारण पर में इष्ट-अनिष्टपना मानकर स्वयं दुःखी होता है। यह जीव, भ्रम के वशीभूत होकर संयोग के आश्रय से किस तरह विकार करता है, यह पहली ढाल में संक्षेप में कहा गया है।

END OF THE FIRST DHAL

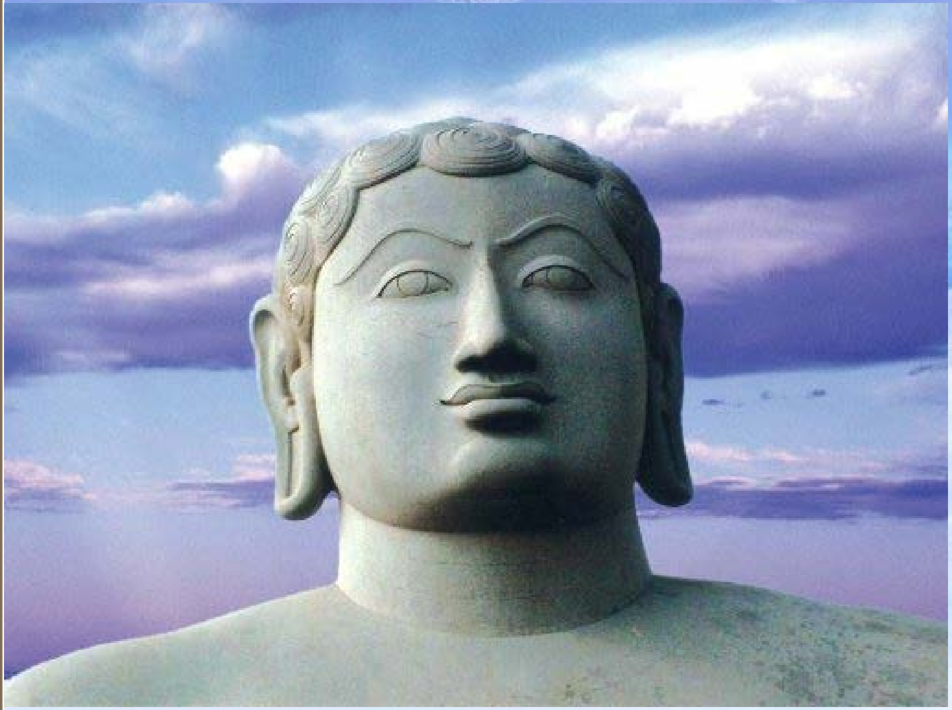

JAYJINENDRA